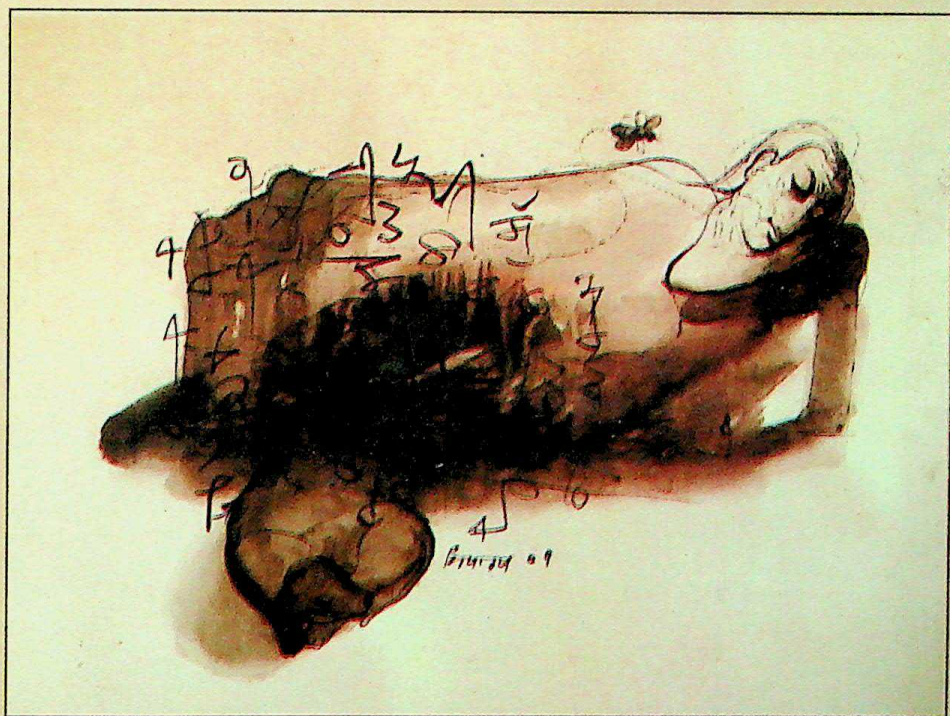


हे स्थगित ईश्वर !

विजय शंकर



कविता के नये स्वर हमेशा एक नयी खोज की तरह भाषा की दुनिया में ऐसा कुछ देना चाहते हैं, जो पहले न दिया गया हो। नये सृजन की यह व्यग्रता 'हे स्थगित ईश्वर' में भी महसूस की जा सकती है। बशर्ते हम ईश्वर से की जा रही इस प्रार्थना के मंतव्य को अपने भीतर उतारने की नैसर्गिकता को पकड़ लें। 'मैं शब्दों में लौट रहा हूँ, तुम देह में लौट आओ'। आज जब युवा कविता की ओर देखते हैं तो पाते हैं कि हम पानी के भीतर अपनी रुकती हुई साँस को चलाने के लिए ज्यादा गहरे में प्रवेश कर रहे हैं। विजय शंकर की ये कविताएँ दूसरों की तय की गयी मंजिलों की कविताएँ नहीं है। इन्हें आप एक छलौंग कह सकते हैं जो विरल से दिक्-काल को फलौंग कर अपनी जड़ों से जुड़ी हुई हैं शब्द और अर्थ की प्रतीतियों से परे विनियोजित भाषा को खारिज करते हुए ये कविताएँ 'पारदर्शी हो रहे... मौन रच...' रही हैं।

विजय शंकर चाक्षुष बिम्बों के माहिर कलाकार हैं। वे खुली आँख से दुनिया और सृजन देखने के आदी हैं। इसीलिए वे कहते हैं कि "इस शहर में बीच का कोई रास्ता नहीं है।" आप अभिशप्त हैं किनारों से टकराने के लिए और यहीं से आप 'महावृक्ष के नीचे-3' एक ऐसे संसार का प्रतिरूप देखते हैं, जो है, पर जिसे हम छू नहीं सकते। उसे तमाम ऐन्द्रिक शक्तियों से छुआ नहीं जा सकता। भले ही उसी की ऊष्मा में हम हैं...

"हे स्थगित ईश्वर!" शब्दों की मार्फत रचा गया मौनालापी संवाद है जो अदृश्य को सम्बोधित है। परन्तु यह छूता हरेक को है क्योंकि उसके बीच चित्रकला-संगीत-नृत्य-लोक कलाएँ ठोस समूचे रूप में इसलिए विद्यमान हैं कि कविता इन सबके बिना हो ही नहीं सकती।

हे स्थगित ईश्वर!

आदरणीय अग्निशेखर (जी)
के लिए
सादर ।

~~अजय~~
(अजय शंकर)
9/9/2009

अग्निशेखर और क्षमा कौल
द्वारा यह
पुस्तक समर्पित

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

Reetay

हे स्थगित ईश्वर!

कविताएँ

विजय शंकर

J.M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu.

Acc No.... 5040...
Dated.... 28/12/2023

प्रिय साहित्य सदन

2226/बी, गली नं. 33, पहला पुस्ता,
सोनिया विहार, दिल्ली-110 094

© विजय शंकर

ISBN : 978-81-88705-20-7

- प्रकाशक : प्रिय साहित्य सदन
2226/बी, गली नं. 33, पहला पुस्ता,
सोनिया विहार, दिल्ली-110 094
- प्रथम संस्करण : 2009
- मूल्य : एक सौ पचास रुपये
- आवरण : चित्रकार सिद्धार्थ की ड्राइंग
- लेज़र टाईप सेटिंग : एस.एस. ग्राफ़िक्स
208, बी-7, सरस्वती कॉम्प्लेक्स, सुभाष चौक,
लक्ष्मी नगर, दिल्ली-92. दूरभाष : 9868625650
- मुद्रक : विशाल कौशिक प्रिन्टर्स, शाहदरा, दिल्ली

'Hé Easthagit Eashwar' (Poetry) by Vijay Shankar

Published by : Priya Sahitya Sadan, 2226/B, Street No. 33, Sonia Vihar, Delhi-110094

First Edition : 2009 Price : 150/- (Rupees One Hundred Fifty Only)

असित सिन्हा के लिए

महामृत्यु का बोध

मैं कविता को देखता हूँ। अक्षरों के बीच छिपे अर्थों को समझता नहीं। शब्दों से उपजी ध्वनियों को सुनता हूँ। कविता को पढ़ना, उसे सुनना और देखना मुझे मेरे अतीत में ले जाता है। न जाने कहाँ-कहाँ ले जाता अपने साथ, उँगली पकड़ कर। फिर लौटता हूँ अपने पास। लगता है किसी ने छुआ हो हल्के से और न जाने कहाँ छिप गया सुदूर में। गाता है जब कोई गीत स्वयं में मग्न होकर, अपने में स्थिर बैठकर, शब्द ध्वनियाँ मँडराती है आसपास। बहुत खुला है आकाश। गाते हुए हाथ बढ़ाता है कोई। एक-एक शब्द को चुन कर रखता हो अपने पास। उसकी हर एक श्रुति बुला-बुलाकर लाती है अपने मित्रों को दूर से— कहती है, यहाँ बैठा है कोई हमारा मित्र, गा रहा है कोई गीत। बुलाता है कोई जैसे बिछुड़े शब्दों को— पहचानता हो कोई अपने गुम हुए मित्रों को। शब्द जैसे पिरोये हुए हैं किसी महीन धागे में। किसी ने ओढ़ ली हो शब्दों की चादर अपने आस-पास। अनुस्मृतियों से घिरा कोई निहार रहा है स्वयं को। आस-पास बिखरे रंगों से मानो कोई श्रृंगार कर रहा हो—ऐसे जानता हूँ मैं कविता को। कुछ ऐसे पढ़ता हूँ मैं कविता को।

कहते हैं नदियाँ जितने ऊँचे पर्वतों से आती हैं उतनी ही चंचल होती हैं। पथरों को तोड़ती, बादलों को लाँघती, चौड़े पाट किये हुए मैदानों तक पहुँचती हैं। ठण्डे निर्मल जल से ओत-प्रोत जीवन को साधती हैं— बहती हुई जाती हैं समुद्र की ओर। तीर्थ उन्हीं नदियों के किनारे बसते हैं जो जा मिलती है अपने प्रियतम समुद्र से।

कवि एक नदी की तरह है। उसे एक लम्बी यात्रा करनी है। वह अपना रास्ता स्वयं ढूँढ़ लेता है। कोई सुने या ना सुने, कोई देखे या ना देखे उसे तो बस जाना है। अपने शब्द समेटे—अपने शब्दों को छोड़ते, कहीं दूर महाशब्द में समा जाना है। एक महान् कविता ढेर सारे शब्दों को साथ लिये तरह-तरह की ध्वनियाँ बजाते हुए चलती है और अन्त में एक महाचुप्पी में समा जाती है। मैं ऐसे देखता हूँ कविता को।

कविता—जो मेरे मन में उठे हज़ारों शब्दों को अपने साथ समेट कर ले जाय और छोड़ जाय महाचुप्पी, जिसका सम्बन्ध समझने से नहीं—जानने से है।

कविता कुछ समझाती नहीं—जनाती है। जन्म देती किसी नये को। कविता दुःख का भार नहीं—कविता सुख की व्याख्या भी नहीं है। कविता शुद्ध देखना और निर्मल दृष्टि की व्याख्या है। कविता विशुद्ध सुनने का चित्र है।

अपरिचित नहीं है कोई शब्द। स्मृतियों में बसी है ध्वनियाँ शब्दों की जैसे धूप और छाया को हम जानते हैं, जैसे सूर्य को, चन्द्रमा को बताना नहीं पड़ता, जैसे चुप्पी, महाचुप्पी, महाशान्ति स्थित-स्थिर है। ऐसे ही कवि एक कविता कहता है—

अपरिचय
जुनून की स्मृति न बन पाएँ
धूप वृक्ष से न बिछड़े
जल
जलमय अपने हाथों को
स्थिर कर लें
शून्य समर्पण का वैभव
क्षितिज में लाली फैलाएँ
हे स्थगित ईश्वर!
मैं शब्दों में लौट रहा हूँ
तुम देह में लौट आओ।

(इसी संकलन से)

बहती नदियाँ वापिस पहाड़ में चढ़ती नहीं, लौटता नहीं बीता हुआ पल—बोला हुआ शब्द। काली स्याही से लिखा हुआ शब्द लौटता नहीं अपने अमूर्तन में। हर पल की महामृत्यु का बोध कविता होती है।

लौटना न होने की विस्मृति है।

(इसी संकलन से)

लौटा जा नहीं सकता पर सो जाता है कभी कोई और बार-बार लौटता है स्मृति में। कभी हँसता तो कभी रोता, कभी बैठता तो कभी भागता मन स्मृतियों में खो जाता है। कवि जल को सम्बोधित करता है—

जल की नींद
कैसी होती है जल की नींद ?

(इसी संकलन से)

प्रकृति से अलग हो नहीं सकती मनुष्य की देह, उसका मन। लगता है जैसे जल, देह और मन का कोई सम्बन्ध है गहरा-पुराना। जल का बहना, बहते जाना, महावृक्ष का रूप लेकर पत्ते-पत्ते में गहरा हरा रंग भरना, ध्यानस्थ होकर किसी की प्रार्थना का रूप महावृक्ष की छाया में किसी का जलमय हो जाना किसी अनुबन्ध की स्मृति कराता है।

इधर कुछ दिनों से
बहुत गहराई में
चट्टानों के बीच बहता
मनुष्यों, मशीनों और विचारों से
बचा जल
मेरी देह को शीतल कर रहा है
क्या प्रकृति का
कोई पुराना अनुबन्ध है ?
महावृक्ष के नीचे
अभय मुद्रा में ध्यानस्थ कोई
जलमय हो रहा है।

(इसी संकलन से)

विजय शंकर की कविता पढ़ते हुए सदा ऐसा लगता है कि जैसे कोई नदी सभ्यता के प्राचीन समय में, बहती नदी के किनारे, किसी कुटिया में बैठा स्वयं को सम्बोधित गीत गा रहा है। सड़क सभ्यता और शहरों की कांक्रीट इमारतों के बीच, अनभिज्ञ घूमता-फिरता जोगी नदी का गीत गाये जा रहा है। प्रकृति, मन और देह को तलाशता साइबर हार्डवेयर पर विचरता कवि अकस्मात् प्रविष्ट करता है अपने देश-काल में।

— सिद्धार्थ

प्रणति

अपरिचय

जुनून की स्मृति न बन पाएँ

धूप वृक्ष से न बिछड़े

जल

जलमय अपने हाथों को

स्थिर कर लें

शून्य समर्पण का वैभव

क्षितिज में लाली फैलाएँ

हे स्थगित ईश्वर!

मैं शब्दों में लौट रहा हूँ

तुम देह में लौट आओ।

अनुक्रम

कितना मुश्किल है लौटना	... 17
अब कहीं निगाहें ठहर रही हैं	... 18
नींद से ऊबा हुआ-सा	... 19
यह दोहराने का समय है	... 20
प्रतीक्षा	... 21
यह तुम्हारा ही समय है	... 22
मैं तैयार हो रहा हूँ	... 23
जब मन नहीं लगता	... 24
आज	... 25
वसन्त	... 26
कुछ देखने से ही	... 27
वृक्ष की तरह	... 28
अभी कल ही श्रावण	... 29
दिन डूबने के बाद	... 30
नींद का क्या	... 31
मैं भूल गया हूँ	... 32
खजुराहो	... 33
भिक्षुक	... 34
लौटना	... 35
पूर्व संध्या पर	... 36
बहुत प्रतीक्षा के बाद	... 37
इबारत	... 38

इस मैदानी	... 40
वह बचना चाहती थी	... 41
उमा की सृष्टि	... 42
धरोहर	... 43
उसकी आँखें	... 44
वयस्क होती लड़की (1)	... 45
वयस्क होती लड़की (2)	... 46
वयस्क होती लड़की (3)	... 47
एक अनुष्ठान	... 48
लैंडस्केप पेंटर	... 50
वह एक छद्म समय	... 51
अखिल-सी दो लड़कियाँ (1)	... 52
अखिल-सी दो लड़कियाँ (2)	... 54
अखिल-सी दो लड़कियाँ (3)	... 55
अपने ही	... 56
इच्छा थी	... 57
वह मुस्कुरा रही है	... 58
तुम्हारी देह का स्पर्श	... 59
इलेक्ट्रा	... 60
लौट गये चाचा (1)	... 62
लौट गये चाचा (2)	... 63
अनिता	... 64
हवा ने कोई शब्द उछाला था	... 66
सुहासिनी	... 67
ये नदी बुझ गयी है	... 68
दूर से ही	... 69
बेतवा के किनारे	... 70

अनगढ़ सौन्दर्य	... 72
फूल शब्द	... 74
महावृक्ष के नीचे (1)	... 75
महावृक्ष के नीचे (2)	... 76
केसवा	... 77
नीम का वृक्ष	... 78
भोर	... 80
बीच का रास्ता	... 81
रन मन के जंगल में (1)	... 83
रन मन के जंगल में (2)	... 84
रन मन के जंगल में (3)	... 85
रन मन के जंगल में (4)	... 86
एक जैसा आकाश	... 87
एक शब्द है	... 89
ठक्-ठक्	... 90
ईश्वर का अधूरापन	... 92
मैं पहचान नहीं सका	... 94
एक परिचित की मृत्यु पर	... 97
यक्षियों के निर्जन प्रदेश में	... 101
राग विभास (1)	... 104
राग विभास (2)	... 105
राग विभास (3)	... 106
राग विभास (4)	... 107
राग विभास (5)	... 108
रोज़ एक फूल खिलता है	... 109
मंडी हाऊस में फ़कीरी	... 111

कितना मुश्किल है लौटना

कितना मुश्किल है लौटना

एक वृक्ष के पास

मैं दुबारा नहीं पहुँचता

नदी के करीब

हम दुबारा नहीं लौटते

क्या देह लौटती है?

क्या मनुष्य लौटता है?

जातीय स्मृतियाँ भी

लौट नहीं पायीं

इन वर्षों में

लौटना न होने की विस्मृति है!

अब कहीं निगाहें ठहर रही हैं

अब कहीं निगाहें ठहर रही हैं

देह-विदेह में

कितने प्रकाश वर्षों की व्यर्थता का अनुभव

कितनी स्मृतियों को झुठलाने के बाद

सुदूर पानी के प्रदेश में

किसी ने अपने हाथों को देखा है

किसी ने सड़क से हटकर

हरी घास पर धीरे से क़दम रखा है

स्थिर मन से कोई किसी को

देखना चाह रहा है

कल्पना के व्योम से अशक्त होकर

लौट रहा है कोई।

नींद से ऊबा हुआ- सा

एक पुरानी किताब का अध्याय
याद आ रहा था
तालाब के बाईं ओर डेरा हुआ करता था
चिड़ियों की किसमिस बोली से
धड़कनें शान्त हुआ करती थी
ओस की बूंदों पर
दूब की साँसें सुनाई देती थी
हिरण और हरिणी दोनों उन्मत्त रहते थे।

भोर का सपना
पेड़ से लिपटी लताओं-सा दिखता था।
शब्द लौटकर नहीं आते थे
वर्षा में भीगे बच्चों-सा
जीवन कल्प हुआ करता था।

ऋषि पुरुष
शान्त स्थिर तन्मय
ऐसे में
नींद से ऊबा हुआ-सा
मैं जागा।

यह दोहराने का समय है

यह दोहराने का समय है
इतिहास नहीं, स्मृति

पीले पहाड़
काली नदी
तीन ताल में निबद्ध भैरवी

पहाड़ों की टूटन
बर्फ का पिघलना

कुछ इस तरह से मुँह फेर लो
एक आँख ही देखें
सृष्टि का सौभाग्य

इन गरजते-बरसते बादलों को
निष्णात होने दो

किसी भी शताब्दी का
अन्त देखना
ऐसे ही सम्भव है।

प्रतीक्षा

यह

जल से वाष्प बनने की या फिर

स्वेत बूँद होने की

प्रतीक्षा नहीं है

यह अनुवाद की प्रक्रिया का

अनिवार्य अनुबन्ध भी नहीं

न किसी जन्म की प्रतीक्षा है

न मृत्यु की

यह उसके-ह्रास की अधूरी कहानी

का कोई हिस्सा है

सूरज को एक रंग से वंचित करती

आकाश की लालिमा है

नंग धड़ंग

कृशकाय शरीर की

मृत आत्मा का

कोई बैरंग स्वप्न है

यह प्रतीक्षा का छद्म है।

यह तुम्हारा ही समय है

यह तुम्हारा ही समय है
और तुम अब तब के हो।

यहीं खड़े-खड़े थोड़ा सा मुड़ना था
उधर से जो किरणें आ रही थीं
तुम्हारे लिए ही थीं

विक्षिप्त सा बचपन
तुम्हें ही निहार रहा था।

अनचाहे शब्द
निकलने थे, निकल गये
बस थोड़ा-सा ऊपर उठना था
ज़मीन से नहीं ज़मीर से
सिर्फ़ दो क़दम ही उठाने थे
इस बार थोड़ी-सी फ़ुर्सत निकालते

देखते इत्मीनान से
स्मित-सा
अपना ही चेहरा।

मैं तैयार हो रहा हूँ

मैं तैयार हो रहा हूँ
अपने स्वप्नों के लिए
विस्मृत 'अँधेरे में'

चीकट लिजलिजी भावनाओं के साथ
कोने आँतरो में फँसे
कबूतरों के बीच
विशाल प्रांगण में
सूफी संतों का लिबास पहने
जुनून में गुनगुना रहा हूँ

पता नहीं
स्वप्न मुझे पहचानेंगे
या नहीं।

जब मन नहीं लगता

जब मन नहीं लगता
मैं लौटने लगता हूँ
अपनी जड़ों की तरफ़
धीरे-धीरे नष्ट होने का स्वाद
चटपटा लगता है
सारे रंग दूसरों की आँखों में
शरण लेते हैं
शब्दों को
बच्चों की तरह फुसलाने लगता हूँ।

ऐसे में जब कोई
सुन्दर दिखता है
तो भय लगता है

इस डर की विपदा
फूलों पर पड़ती है
इस डर का खुमार
नदी की मछलियाँ पहचानती हैं
इस डर से,
दुबले होते हैं
गेहूँ के दाने।

आज

आज

वर्षा में भींगने का दिन था

कितनी बारिशों में

कितनी समेटी हुई स्मृतियाँ थी

कहाँ गयीं?

आकाश की लालिमा में

बादलों में

वर्षा की ध्वनियों में

मन-अमन में

छिपती-दिखती तुम

क्या मृत्यु की तरह

बहाना ढूँढ रही हो?

वसन्त

वसन्त

इस चौड़ी सड़क से
पलाश को अनदेखा कर
जा रहा है
क्या उसे पुकार लूँ?

अनिवार्य के पहले
माया मृत्यु दिखती है।

देह जर्जर हो रही है
कितनी स्याह और दलदल
गुफ़ाओं से गुज़र रही है
शब्दों की झाँकियाँ
कहीं भी पहुँचने को आतुर
कवि-मन
किसी के भी उतारे हुए कपड़े
पहन रहा है।

कुछ देखने से ही

कुछ देखने से ही सम्भव हुई होंगी
ये स्वर लहरियाँ
कुछ सुनने से ही सम्भव हुई होंगी
ये चित्र लिपियाँ
मौन से आकाश में कुछ दृश्य
सम्भव हुए होंगे
स्पर्श की लालसा से मुस्कुराना या
हँसना सम्भव हुआ होगा
इन सबके अदृश्य होते ही
'कुछ नहीं' प्रकट हुआ होगा।

वृक्ष की तरह

वृक्ष की तरह
नष्ट नहीं होती देह
जाति प्रजाति या वर्ण के
गुरुर से
ओस बर्फ नहीं बनती।

अनकहे शब्द
जीवित रहते हैं
संवेदनाओं को पुख्ता करते
प्रेम को
परिपक्व बनाते

पानी को
दुबारा पानी बनने के लिए
कई अदृश्य प्रक्रियाओं से गुज़रना पड़ता है

कोई भी परम्परा
किसी भी दम्भ की अनुचर नहीं है।

अभी कल ही श्रावण

अभी कल ही श्रावण
अशेष हुआ पृष्ठों से

गरजते, फिसलते, टहलते बादल
सावन के हैं
इनकी आवाज़ में
भोर का उनींदापन है
सप्तर्षि की थकान है

माँ शब्द से आह्लादित/आतंकित
स्त्री का बदलता स्वभाव है।

अखिल-सी
शान्त बहती नदी-सी
संक्रमण को धारण किये

इस अभागिनी वर्षा का
कोई नाम नहीं है।

दिन डूबने के बाद

दिन डूबने के बाद
दिन ही स्मृति में रहता है
देखी-सुनी
रंगों में, छटाओं में
देह अनर्गल-सा
शब्द संसार रचती है
नींद और स्वप्न के द्वन्द्व से
मैं हर बार लौटता हूँ
जर्जर, विक्षिप्त।

शायद,
स्मृति का स्वप्न ही होगा
जो प्रेम जगाता है
फिर कहाँ?
नींद, देह, शब्द, रंग
फिर कहाँ मैं?

नींद का क्या

नींद का क्या
स्वप्न के भी वही हाल हैं
शब्दों की स्मृतियाँ
आकाश को रंगहीन बना रही हैं
कभी-कभी सूरज भी थोड़ा बाएँ मुड़ जाता है
इधर की वर्षा अपना नया नाम चाह रही है
कई-कई दिन निष्क्रिय, परजीवी
सफेद से क्यों जा रहे हैं?
क्या मैं भी
कुछ नहीं करने के लिए विरोध कर रहा हूँ?

मैं भूल गया हूँ

शहर से दूर
आकाश को देखना
उसके रंग में विस्मृत हो जाना
उसे अपना कहना
मैं भूल गया हूँ।

किसी एक धुरी पर
स्थिर नहीं है
मेरी सहज गति की गीतिका।

उस काले पत्थर का स्पर्श
प्रतिध्वनि जैसा
साथ-साथ चलता रहा

घर की लिपी-पुती
उस दीवार के गोबर से टकराता
वारकरी चित्रकृति की
लयात्मक शैली का कथ्य
महावृक्ष को समाहित करने की
जिजीविषा लिये
मयूर को अपना दूत बना रहा है।

इस भाषा को
किसने श्राप दिया?
अनिवार ऋषि ने
इस भूमि पर न आने का
संकल्प क्यों लिया है?

अब देखने का
कोई सुख नहीं है।

खजुराहो

यह कोष्ठकों में बन्द
चिरजीवी,
सुन्दर, मृत
खजुराहो है

कई वर्षों बाद
आने वाले शब्दों को
स्मृतियों को
पत्थरों पर उकेरी गई
आकृतियों से सींचित किया जा सके
इस तरह
पत्थरों पर लिखी
यह प्रणति है

शायद
यह वही जगह है
जहाँ इति का
हास-परिहास किया जाता था।

भिक्षुक

निःश्वासें से दूषित
इस जड़, चेतन, वस्तु, आकार
रंग शून्य और अँधेरे में
एक उज्ज्वल धवल
झिलमिलाती
रेखा की प्रतिकृति
सृष्टि की संवादिनी जैसी
आच्छादित शुभ्र आकाशकीय अनुकम्पा
निगड़ित आँखों से
देख पाने का लोभ

इससे आगे मैं
कुछ नहीं देख पाया
बहुत छोटे अक्षरों में
महीन और विदग्ध अर्थों में शब्द
सम्भव नहीं हो पा रहे हैं

यही तो आशय है
सम्भवतः समय हमें यहीं तक
छोड़ने आया है

याद कर रहा हूँ
उस चीनी भिक्षुक को
जिसने लौटने की सलाह दी थी
शायद उसी के लिए
सम्भव था लौटना

(निर्मलजी की एक कहानी में आये सन्दर्भ को याद करते हुए।)

लौटना

लौटना

किसी भी यात्रा का हिस्सा नहीं है

जाते समय

वह पर्वत श्रृंखलाएँ

मेरे साथ-साथ चल रहीं थीं

उस नदी के पानी ने रोमांचित किया था

भावना-सम्भावनाओं के स्वप्न चल रहे थे

शब्दों की उपयोगिता समझ में आयी थी

कितनी विनम्र-सी त्रासदी है?

ठहरने का कोई प्रावधान नहीं

न जीवन में, न सोच में

जब मैं लौटता हूँ

घर बाईं ओर हो जाता है

सूरज उत्तर दिशा में दिखाई देता है

पाठशालाएँ मुँह फेरे खड़ी रहती हैं

स्वप्न मटमैले नज़र आते हैं,

बच्चों की बोली सुनाई नहीं पड़ती

स्त्रियाँ अपनी थकान से आत्मविभोर हैं।

पूर्व सन्ध्या पर

वे एक वाक्य को
कई हिस्सों में बोल रहे हैं

आस पास खड़े
कई चेहरों की
भंगिमाएँ बदल रही हैं

घूमते परिदृश्य में स्थिर
अलौकिक से खड़े
वे टुकड़ा टुकड़ा रच रहे हैं

अधूरे वाक्य में...

कभी अँधेरे में देखना
कितना उजाला दिखेगा
जब कभी वर्षा में भींगोगे
महसूस करोगे कितने प्यासे हो

मृत्यु के कुछ दिन पहले
उन्होंने इतना ही कहा था
कैसे लोग
पूरा पूरा वाक्य बिना झिझक
मीठी आवाज़ में बोल लेते हैं?

बहुत प्रतीक्षा के बाद

बहुत प्रतीक्षा के बाद
एक सफ़ेद-सा बादल
इस छोर से उस छोर चला गया
तरस गया होगा
कोई भरपूर नज़रों से उसे देखता
तो शायद बरस पड़ता
किसी जंगल में, पहाड़ पर
अकेले ही थका-हारा गिर पड़ा होगा

ये हल्की-पीली किसी ऋतु की
शुरुआत है

इस वर्ष बेल लिपटेगी नहीं पेड़ों से
बहुत कम खिलेंगे हरे फूल
वह कुम्हार इस बार बाज़ार नहीं जा पाएगा
हरी और लाल चुनरी
बिकेगी नहीं उस बनिये की

इस बार
बच्चों के नये नाम नहीं आएँगे
माँ की स्मृति में।

इबारत

शायद

इबारतों का उल्टा लिखा जाना

शुरू हो गया है

गणित भी उल्टा लिखा जाएगा

शब्द भी

मुश्किल से पढ़े जाएँगे।

नये रास्तों के लिए

नयी सड़कें बनेंगी

सुकून की व्याख्या

बड़ी कठिनाई से

ज़हन में उतरेगी

अपनी ही निगहबानी करना

एक लम्बी नींद के बाद ही

सम्भव होगा।

बच्चों के लिए
कुछ नया नहीं होगा
वैसे भी उनके लिए
सब नया ही है
उल्टा भी
और उल्टे जैसा सीधा भी

हम ही ठहर
नहीं पाएँगे
घर के आसपास
चल नहीं पाएँगे दलदल में
देख नहीं पाएँगे
अपने शहर के वजूद को

उल्टा लिखा जाना
वैसे बहुत सरल है
लेकिन अभी उसका व्याकरण नहीं बना
अभी उसकी मात्राएँ नहीं हैं।

इस मैदानी

इस मैदानी
हरी घास में
यूँ ही नहीं उग आया होगा
पारिजात का वृक्ष

शायद
ईश्वर ने जगह बनाई होगी
अपनी प्रार्थना के लिए

कभी वह नदियों को बुलाता होगा
स्त्रियों के वेष में
कभी उसके समक्ष टहनियों पर
पक्षी प्रेम करते होंगे
कभी वह स्वप्नों को
यात्रा पर निकलते हुए देखता होगा...

वह बचना चाहती थी

बनने-सँवरने
ठगने
बहकने
सौन्दर्य और उसकी परिभाषा से
वह बचना चाहती थी

तंग लिबास
आँखों का सुरमा
अमरीकी छीटें की नथनी
भड़कीली चोली और
लखनवी जूता पहनने की
उसकी इच्छा नहीं थी

सरल-सी हँसी के अतिरिक्त
उसे कठिन-सा मुस्कराना
नहीं आता था

उसकी चाल का
कोई ऐतिहासिक महत्व नहीं था

वह बहुत मीठी
गाली दे सकती थी

स्त्री थी
स्त्री होने को जानती थी
बच नहीं सकी।

उमा की सृष्टि

रहस्यमय तर्जनी
रोक रही है रास्ता
अधखिली स्त्रियाँ
देख रही है कटाक्ष से ईश्वर को

हल्की नीली रौशानी में
कदम उठ रहे हैं

स्पर्श
उमा की सृष्टि बन रहा है।

धरोहर

वह पूरी बात सुनना भी नहीं चाहती
अधूरे में ही
जीने का सुख है

हर कोई कल्पना को
आत्मसात् करने की लालसा में
शब्दों के
किनारे-किनारे चल रहा है।

कोई अपना पूरा चेहरा
नहीं बता रहा
जैसे उस अँधेरे में
उसकी जान अटकी है

कितनी झिझक है
वह 'शायद' कहकर ही
अपने शब्दों को अंजाम दे रहा है।

वह अधूरा-अधूरा ही
वयस्क हो रहा है

क्या ये मधुर स्मृति नहीं है कि
कोई किसी को खारिज नहीं कर रहा है।

सारे अधूरे
इकट्ठे रह रहे हैं।

पुरुष अपने कद में छोटे पड़ गये हैं
माँए अधूरी रह गयी हैं।

उसकी आँखें

उसकी आँखें

ठहर कर

प्रश्नों की संरचना कर रही है

वह रोक रहा है शब्दों को

धुली धूप

और घनी संनाटी सुबह में

यह स्थगित जीवन है

या स्थगित प्रेम?

मेरे लिये

जब समय सिकुड़ रहा होगा

तुम ऐसे ही देखना।

वयस्क होती लड़की (1)

हिलते हुए पानी में
उसकी परछाई
एक बहता हुआ डर है

अनायास वह
अपने शरीर को
टटोलती है

एक कदम चलकर
आश्वस्त होती है
कुछ बोलती है
खुद ही सुनती है
फिर कहीं मुस्कुराती है
तब तक
सब उसे देख लेते हैं।

सृष्टि उसके अकेले होने के खिलाफ है।

वयस्क होती लड़की (2)

कहती है
तुम बिन्दु हो
पूर्ण विराम हो
अन्त हो
धीरे-धीरे स्वभाव हो जाओगे

एक रंग दिखेगा
दूसरा दिखेगा
फिर सब मिट जाएगा।

वयस्क होती लड़की (3)

उसे चुनना है फूल
चुनना है रंग
बनाने हैं शबीह
सुनना है आवाज़
चलना है किनारे-किनारे
देखनी है
आस पास बिखरी हरी हरी लालिमा
चुनना है जीवन
फिर मृत्यु चुननी है
नींद चुननी है
सपने चुनने हैं
सँवारना है अपने चुनने को।

वैसे तो प्रश्न भी चुनने हैं
लेकिन उसके होने का अर्थ ये नहीं है।

लड़की
अदृश्य दीवार रचती चलती है।

एक अनुष्ठान

कोई कथा नहीं
कोई नाम नहीं, प्रेम के लिए
एक अनुष्ठान जैसा परिशिष्ट
जोड़ना चाहता हूँ

सुबह के साथ जुड़ नहीं पाएगा
सुबह हम अपने होने को याद करते हैं

कोई अनुनय विनय
संवाद और संवर्धन
सुनना नहीं चाहेगा
नये रंग से डर जाएँगे
हम, हमारे बुजुर्ग

दूसरे और तीसरे पहर की
कोई स्मृतियाँ नहीं हैं मेरे मन में
क्या स्मृतिहीन अनुष्ठान की कोई जगह होगी?

गोधूलि में समापन होता है
लौटना होता है
शिथिल, विचारहीन

मस्तिष्क के अधीन
अनुगूँजें सीमित कर देती हैं
कदमों की दूरी

फिर बची रात
कितने शत्रुओं से लड़ोगे
स्वप्न से शुरू होते युद्ध को
देह की आकांक्षा ही नष्ट करती है।

लैंडस्केप पेंटर

हरी पत्तियाँ
समुद्री किनारा
पहाड़ों की शृंखला
मुस्कुराते होंठ
चमकती आँखें
सब देख रहे हैं
ठहरा हुआ अन्त

अनन्य दृष्टि के लिए
अनन्त पहचानों के लिए

विस्तार की जड़ों तक
रंगों की ऊष्मा और
चिड़ियों की भाषा के बरक्स

वह प्रेम को समुद्र में छिपाते हुए
आकाश चुन रहा है।

वह एक छद्म समय

सब कैसा

शान्त, स्तब्ध, स्थिर मौन

अचल हो गया

कितनी शारीरिक पीड़ाओं से ग्रस्त

मानसिक उद्वेलन था

मैं शरीर से

मन से

झूठा प्रेम करने निकला था।

वह संयोग ही था

जो साथ नहीं दे रहा था

न उनसे मिलने में

न मेरे विश्रुंखल होने में।

मैं कृशकाय

हो रहा था।

वह एक छद्म समय

एक हिंसक स्वप्न था।

अखिल-सी दो लड़कियाँ (1)

(सुधा और वसुधा के लिए)

शब्दों की तरह

स्वच्छ

ईर्ष्या करती हुई

स्वप्न में

घर से बाहर

घर बनाती हुई

ठहर गयी हैं

ओस पर

कभी

दोनों हँसती हैं

स्मृति में

सुवर्ण रेखा का वैभव लेकर

अमर्त्य उपस्थित होता है

ठिठक जाती हैं

समय-असमय की सहेलियाँ

कभी वे स्वयं
ऋतुएँ हो जाती हैं
अपने शोर में
सबके मौन को बचाती हुई

उनके आसपास
शब्द झूठे लगते हैं
सोच अनमना-सा लगता है
फलसफ़ा ठगा जाता है

इस अपरिचय के समय में
कहानियाँ बुन रही हैं
अनंग की
अखिल-सी दो लड़कियाँ

अखिल- सी दो लड़कियाँ (2)

वैसे तो एक लड़की
दूसरी अदृश्य लड़की के लिए खड़ी है

जहाँ तहाँ उड़ती हुई
तितली-सी दिखाई देती है

उन्हें तुतलाते हुए बच्चे नज़र आते हैं
ऐसी ही किसी शाम वह
ईश्वर को सँजोती हैं
खेल-खेल में माँ बनती हैं
नहलाती हैं
पाठ याद कराती हैं
स्कूल भेजती हैं
पेड़ के नीचे घर बन जाता है

उस दिन
स्पर्श नहीं रहता
मृत्यु नहीं रहती।

अखिल- सी दो लड़कियाँ (3)

फिर कभी पलाश के दिन आते हैं
जगह जगह दिखाई देने लगती है
गहरे हरे रंग की चूड़ियाँ
लाल दुपट्टा
जूही की कलियाँ
कोयल की गूँजती आवाज़ें
फाल्गुन, होली; वसन्त
जैसे-तैसे लड़कियाँ
स्त्रियाँ बनती हैं
कुछ दिनों तक शब्द
“बिहारी” की कविता में चले जाते हैं

उन हज़ारों लड़कियों को
जो उर्वरक मिट्टी की तरह नष्ट होती जा रही हैं
बरसों बाद
निःसंग होकर
देख रही हैं दो लड़कियाँ।

अपने ही

अपने ही
दूसरे हाथ को छूने से
अपरिचय झलकता है
देह की
यह कौन सी प्रतीति है?
क्या स्पर्श आतंकित है?

कल पर
काला रंग पोता गया
जतन से
तहकर रखी गयी
पगड़ी की भावुकता
कमज़ोर हाथों में
सौपा गया स्त्री को

बिछड़ रहे हैं
दिक् और काल

इच्छा थी

इच्छा थी
बुझती रोशनी में
क्षण भर
अधूरा ही उसे देख लूँ
कल मैं भी
बौना हो जाऊँगा

साँची संग्रहालय की 'तारा'
शर्म से मटमैला चेहरा छिपाते हुए
बाहर आएगी
अनगढ़ता
अबोधता के बदले
स्वीकार करेगी दासता।

वह मुस्कुरा रही है

कुछ पलों में ही उसकी
पूरी देह ने
कुंडलिनी की परिक्रमा की होगी
आँखों ने
आकाश और सूर्य की
अनुकम्पा हासिल की होगी
धरती के कपालों को उसने
धीरे से सहलाया होगा
प्राण-वायु के साथ
ऋचाओं को दुहराया होगा
कदम बढ़ाते-बढ़ाते
हाथ की लकीरों को देखा होगा
मध्यमा से जल का स्पर्श किया होगा
बहुत संजीदगी से चेतना ने
उस तरफ मुँह किया होगा
तब कहीं
सँभलते हुए धीरे-से
वह मुस्कुरा रही है

अनन्तिम, अनन्य, अनासक्त
सब कुछ ठहरा हुआ है।

तुम्हारी देह का स्पर्श

तुम्हारी देह का स्पर्श
अक्षम्य सौन्दर्य का आस्वाद
मृत्योर्मय जीवन
अगठित शब्दों की चुष्णी

कठिन समय की प्राचीन देह
बार बार सँवरती
विचारहीन, कँवल की त्वचा
संश्लिष्ट, कठोर, विचारवान

उस रंग का क्या कीजै
जो देखते ही उड़ जाता

अनिवार्य स्वीकृति के लिए
मुस्कुराहट ठहरी है।

इलेक्ट्रा

इस आरोपित प्रार्थना स्थल में
इलेक्ट्रा की तरह
घूम रही है लड़की
शव के आस पास

आत्मा का विकृत रूप
अनिच्छा की तरह
लड़की में घर कर गया।

यह कैद किया गया
आकाश है।

तुम स्वच्छ निर्मल
समीर की तरह
यहाँ से गुज़र जाओ
यह सफ़ेद रंग पिघलने लगेगा
मौन, व्यभिचार करने लगेगा।

लड़की
अपने निर्वस्त्र होने
को याद करेगी
ठहर कर उसे
स्त्री होने का आभास होगा।

फिर शब्द, प्रार्थना
मुस्कान और अठखेलियाँ
करती उसकी आँखें
पहले तुम्हें
फिर क्षितिज और
फिर आकाश को देखेंगी

अनन्त, अस्वीकार-सा आकाश
हल्के नीले रंग में
परिवर्तित होगा

यही इलेक्ट्रा की
पूर्णाहुति होगी।

लौट गये चाचा (1)

बहुत साफ़ प्रतिध्वनियाँ
आन्तरिक गवाक्ष से
ऊपर बिखरती
थरथराती आवाज़ें
छोटी की
उससे छोटी की
बड़ी की
उससे बड़ी की
हाँ जी!
अच्छा जी!
कोई बात नहीं !!
यह कोई शोरगुल नहीं
हस्तक्षेप नहीं
कभी मैं
इससे ही विचलित हो जाता था।

लौट गए चाचा (2)

शब्दों के कम्पन
उसकी झुँझलाहट
उसका दर्द
उसकी ध्वनियाँ
विलाप
बिना चेहरा देखे ही
आत्मसात् कर रहा हूँ

मैं जो
इतनी लम्बी यात्रा
करके लौटा हूँ
“लौट गये चाचा”
कुछ इतनी हल्की मीठी
आवाज़ में पूछा था उसने
मेरी सारी थकान मिट गयी।

अनिता

टूटते-जुड़ते
खँडहरों में
वह फिर वापिस आ रही है

साक्षी है उसका शरीर
तनी हुई रीढ़ की हड्डी
फबता पहनावा
मुख की गरिमा
लुकती-छुपती मुस्कुराहट

बरसों से बनी-ठहरी
अनिता ढह रही है

“क्या एक कमरा
पियानो के लिए बनवा लें?”

बहुत सारे कमरों से घिरा
वह हालनुमा कमरा
बाहर के शोर से बचा रहे

पियानो पर बजती धुनें
हर कमरे में सुनाई दें

अब वह सिर्फ
अवकाश लेना चाहती है
नींव पर उठती दीवारों पर
पानी डालते हुए
अलग और सरल होना चाहती है

अनिता!
अपना घर बना रही है।

हवा ने कोई शब्द उछाला था

अभी कुछ दिन पहले
बहुत धीमे से
गुनगुनाती हवा ने कोई शब्द
उछाला था

मेरी आँखों के सामने ही
वह अदृश्य हो गया

वृक्ष की टहनी को
हल्के से छूता हुआ
काली मिट्टी की सतह पर
ठहरता हुआ
सरसों के फूलों की
परिक्रमा करते हुए
टहलते-टहलते
पहाड़ की तरफ चला गया

मैं उसे क्या रोकता?

हाँ, लेकिन यह ख़बर
मैंने ही फैलाई थी

एक पूरी पीढ़ी चल पड़ी
उस काली मिट्टी की ओर
स्थिर हरे से उस वृक्ष की ओर
पूर्वी पहाड़ की ओर।

सुहासिनी

वासन्ती दिनों में
हवा के झोंके के साथ
भोर होते ही
सुहासिनी चल पड़ी थी

अभी सूर्योदय होने में देर है
हवा कुछ और विलम्ब कर रही है

अंधकार
अपनी आभा से
पीछा छोड़ा रहा है

जामुनी पत्तों के पौधे
सुहासिनी को देखना चाह रहे हैं

जल रसातल में कैसे पहुँच गया?
केसवा तो यहीं बगल में था?
आज उस गेंदे के फूल को भी
खिलना था?

अकस्मात् फैली गन्ध
असंख्य कणों ने
अलंघ्य क्षणों के बाद
जंगल में
मृत्यु का सुहासिनी रूप देखा।

ये नदी बुझ गयी है

ये नदी बुझ गयी है

उत्कल प्रदेश की एक छोटी नदी
समुद्री तूफ़ान के आगे
वायु के उस वेग में
रौद्र-वीभत्स रूप धारण किये
मृत्यु की विशालकाय मूर्ति को
चलते देख नहीं पायी।

जिसने सिर्फ़ जीवन देखा है
सौम्य, सरल
उसकी संस्कृति भी
वैसी ही उज्ज्वल धवल

वह कौन-सी जटिल विकराल जीवन की
परछाई थी
जिसने ग्रस लिया
उस पौराणिक, आदिम समुदाय की
प्रतिध्वनियों को
जहाँ ठहरे हुए
मुड़ते हुए लोग थे
चाह नहीं थी

वह दुविधा का प्रदेश भी नहीं था।

दूर से ही

दूर से ही उसकी गन्ध आती है
वह पहचान ली जाती है

मिट्टी की
नहीं शायद रेत की बनी
उस मूर्ति की
धुँधली-सी स्मृति
साथ लिए घूम रहा हूँ

कलिंग प्रदेश में
अब ऐसे युद्ध का क्या औचित्य
जब मनुष्य नहीं
कोई और कर रहा है युद्ध
बिना पछतावे के।

बेतवा के किनारे

नदी के
उस पार ही
जाना चाहते हैं लोग

उस पार न घर है
न मन्दिर है, न दूकान है
न होटल है, न रास्ता है
उस पार सिर्फ नदी है
जंगल है, अभ्यारण्य है

उस पार जाते-जाते
शायद
विचार शून्य हो जाते हैं लोग

ऐसे ही हर कोई
शान्त, स्निग्ध, स्वच्छ और
पवित्र होता होगा

उस पार हर कोई
कल्पना के साथ
थोड़ी दूर चलता होगा।

उस पार जाने की बेचैनी को
कोई समय
कोई शहर
कोई लालच नहीं रोक पाता

उस पार
शायद
क्षितिज का स्वेद है।

अनगढ़ सौन्दर्य

सड़क के उस पार ही
यह घटित हो रहा था।

लोहे के उस खम्भे को
जंग लग रही थी

सफ़ेद रंग
अपनी काया बदल रहा था

रोज़ दिखने वाले
उस आदमी को
अपना घर नहीं दिख रहा था

वह लड़की
पिता की बात ही
बार-बार दुहरा रही थी

बच्चों की
नयी सिली पैट की बटनें
कई पीढ़ियों से
ठीक ठीक नहीं लग रही थी

उस स्त्री के रोने में
कुछ भी टूट नहीं रहा था

उस बाज़ार में
बरसों से
वही चीज़ें बिक रही थीं

एक बार
सिर्फ़ एक बार ही तुम जाते
अपनी वीभत्स सुरीली आकांक्षा लिये
छिन्न भिन्न हो जाता
उस पार का
अनगढ़ सौन्दर्य।

फूल शब्द

फूल नहीं
फूल शब्द भूल रहा हूँ
मृत्यु नहीं
मृत्यु का परिवेश भूल रहा हूँ
तुम्हें नहीं
तुम्हारा व्यवहार, तुम्हारी आदतें
तुम्हारी आर्द्रता
तुम्हारे स्वप्न भूल रहा हूँ

किस बिन्दु पर
यह सब घटित हो रहा है?
मैंं स्खलित हो रहा हूँ या
मेरा 'मैं' वाष्प बन रहा है?

एक शब्द-हीन यात्रा में
काली मिट्टी को छू रहा हूँ
केसवा के फूलों को
आकाश में देख रहा हूँ
श्वेत श्वान के शरीर पर
काले चकत्ते दिखाई दे रहे हैं
बिजली की हताश रोशनी
लैम्प पोस्ट पर देख रहा हूँ

महावृक्ष के नीचे (1)

जल की नींद
कैसी होती है जल की नींद?

बहती नदी को देखा
सोते को बहते देखा
पहाड़ों से रिसते पानी को देखा
जल प्रपात को देखा
कहीं भी तो स्थिर नहीं है जल
तालाब का जल भी
नहीं! नहीं!

बहुत सम्भव है
थोड़ी नींद तो वह
हममें ही लेता होगा
हम मनुष्यों को
जीवधारियों को
शायद
बहुतों के लिए
नींद लेनी पड़ती होगी

ऐसी ही एक नींद वह
महावृक्ष के नीचे ले रहा था।

महावृक्ष के नीचे (2)

इधर कुछ दिनों से
बहुत गहराई में
चट्टानों के बीच बहता
मनुष्यों, मशीनों और विचारों से
बचा जल
मेरी देह को शीतल कर रहा है

क्या प्रकृति का
कोई पुराना अनुबन्ध है?

महावृक्ष के नीचे
अभय मुद्रा में ध्यानस्थ कोई
जलमय हो रहा है।

केसवा

केसवा के वृक्ष पर
चढ़कर बैठा हूँ
पीले फूल
हरी पत्तियों के बीच
अपना मटमैला रंग लिये
सबको
ऊपर से
आते जाते देख रहा हूँ

मैं भी
ऐसे ही
कहीं नहीं जाता था।

नीम का वृक्ष

उस रात
इस परिसर में कोई
आवाज़ गूँज रही थी
पाखियों की बोली
अस्फुट से शब्द
उसकी गति
सब नीम के वृक्ष को पाकर
निढाल हो गये थे

उस रात मैं सुन रहा था
भौतिकी का अतिमानवीय पक्ष
उस रात
नींद का दर्शन समझ रहा था

याद आ रहा था वह स्पर्श
वह आलिंगन
एडी का आसमानी दुपट्टा

दूसरी भाषा में प्रेम का अनुभव
समुद्री किनारे पर
पसरी प्रफुल्लित देह

मेरे आसपास की दुनिया
शृंगार कर रही थी

पहली आवाज़ बच्चे की थी
पिता तर्पण कर रहे थे
स्त्रियाँ अँगड़ाई लेते हुए
समुद्र को स्वप्न समझ रही थीं

मत्स्य कन्याओं को लौटना था
शहर से अपने शहर

उस रात
नीम के वृक्ष से
ईर्ष्या कर रहा था मैं!

(एडी मलयाली शब्द है जिसका अर्थ 'सखी' होता है।)

भोर

कई सौ दिनों के बाद
आज भोर में उठा हूँ

इस पीले से
सड़ते शरीर जैसे शहर में
नींद भी मुआवज़ा माँग रही है

सप्तर्षि दिखाई नहीं देते
गुनगुनाती हवा कहीं नहीं है

न उजाले की प्रतीक्षा है
न अँधेरे का मलाल

भोर की स्मृतियाँ भी नहीं हैं मेरी
कभी यात्रा के लिए उठा था
कभी दादा के कराहने पर नींद खुली थी

हाँ! एक बार सिर्फ़ एक बार
चन्दा पनिहारिन को देखने
भोर में उठा था।

यमुना के बहुत करीब
गन्दे और
बिना आवाज़ के बहते पानी में
कौन से शब्द स्नान कर रहे हैं?

बीच का रास्ता

इस शहर में
बीच का कोई रास्ता नहीं है

पानी के रास्ते
कहीं नहीं जाते

एक वयोवृद्ध
अड़ियल, मदनिपन से आहत होकर
लौट आता है

कौए, गिलहरी, बन्दर और चिड़ियों को
एक नया व्यास/कैनवास
मिला है इस शहर में

अनजाने ही हर कोई
अपने विस्थापन को दर्ज कर रहा है

मैं कई दिनों से पश्चिम के
पूरब में घूम रहा हूँ
मेरे हाथ अनाथ हो गये हैं
वाणी की मात्राएँ
टूट रही हैं

इधर उधर बेवज़ह
घूम रहा हूँ

इन अनब्याही लड़कियों से
कोई उनका धर्म तो पूछे
उन्हें सिर्फ़ अपने मासिक धर्म की चिन्ता है
उनके तो खिड़की, दरवाज़ों के भी
घर नहीं हैं

यह उसकी ज़मीन थी
उसका क्रीड़ांगन था
उसकी अपनी स्मृतियाँ बनने में
अभी समय था
अपने शरीर से खेलना भी
उसने नहीं सीखा था

इन इकहरे (अ) सुन्दर
लड़कों से कुछ पूछता हूँ
वे मौन इशारा करते हैं
एक पीली और एक सफ़ेद
लकीर की ओर
और अदृश्य हो जाते हैं।

रन मन के जंगल में (1)

एकाएक,
उनके बीच का संवाद
टूट गया था
वे एकालाप भी
नहीं कर रहे थे
किसी पुरुष के आते ही जैसे
स्त्रियाँ चुप हो जाती हैं

हमारे समय से
उनका समय अलग था
वे अब भी साथ रहती थीं
समय के, असमय के
चिड़ियाएँ थीं
वृक्ष को जगा रही थीं।

रन मन के जंगल में (2)

उस पहाड़ी पर
चलते रहने का एक
सलोना-सा आनन्द है

जब मैं रुक जाता हूँ
एक वृक्ष
मेरी बगल में खड़ा हो जाता है

क्या वह मुझे पहचान रहा है?
कुछ बोलना चाह रहा है?
पिछली बार
कौन-सी बात अधूरी रह गयी थी?

वृक्ष के गहरे हरे रंग से मुझे
परे जाना होगा
शायद कोई काया प्रकट हो
किन पत्तों में
उसकी आँखें स्थिर हैं
कौन-सी घड़ी होगी
जब हम एकात्म हो पाएँगे
मैंने उगते ही
सूर्य देवता से
प्रार्थना की थी

अपने आदिम स्वर को
याद करते हुए
टहल रहा हूँ मैं।

रन मन के जंगल में (3)

सुना है

मेरे दादा के दादा

जंगलों में भटकते थे

किसकी तलाश थी उन्हें

कौन-सी लिपि में

रच रहे थे वे

किस भाषा में अनुभवना चाह रहे थे

कौन सी विधि से उन्होंने

आग्रह किया था

प्रवेश के लिए

पृथ्वी पर

हरी घास पर

जल में

पहाड़ों से अलग हुए पत्थरों पर

किस जड़ देवता की प्रार्थना में

उन्होंने गृहत्याग किया था।

क्या यह सब

वह वृक्ष जानता है

जो मेरे रुकते ही

मेरी बगल में खड़ा हो जाता है?

रन मन के जंगल में (4)

क्या वह वृक्ष मेरा काल है?

मैंने तो

सहज स्वीकारा है मृत्यु को

कुछ नहीं रच रहा हूँ

आज खिले फूलों को छू रहा हूँ

आकाश देख रहा हूँ

स्थिर पहाड़ों पर

हल्के हल्के कदमों से चल रहा हूँ

रिसते पानी को

होंठों से लगा रहा हूँ

खुश और असम्भृत

बच्चों की चाल देख रहा हूँ

उसे सन्देह है

वह समझ रहा है

मैं कुछ और देख रहा हूँ

भोर में

स्थिर जल की गति को

जड़ वस्तुओं के स्पन्दन को

उसकी आँखें

अब वह नहीं रह गयी हैं।

एक जैसा आकाश

यह वह जगह है
जहाँ से आकाश सीमित नज़र आता है
अक्षांश और देशांश को दरकिनार कर
अँधेरे में भयभीत
शब्द, रंग, सृष्टि
आड़ी तिरछी रेखाओं में
गुम्फित नज़र आती है

यह वह जगह है
जहाँ डरे हुए लोग आते हैं
सहमे हुए एकालाप करते हैं
कभी कभी कुछ बोल देते हैं
जैसे स्वयं को तसल्ली दे रहे हों

यह वह जगह है
जहाँ जीवन को जीवन नहीं
मृत्यु को मृत्यु नहीं
कहने-सुनने-दशानि वाले
फलसफ़े इकट्ठे हैं

यह वह जगह है
जहाँ उनींदी आँखें
अनूदित करती सहमति
आकाश को संकुचित करने में लगी है

यह वह जगह है
जहाँ सिर्फ एक और
एक जैसा ही आकाश है।

एक शब्द है

असुरों की पूजा अर्चना के लिए
बने शिव मन्दिरों की शृंखला के
ख़त्म होते होते
उल्कापात से बनी झील दिखाई पड़ती है
शिव
प्रतीक रूप में
हर जगह फैले
अगण्य नगण्य से
मानसरोवर को याद करते
स्वप्निल
अनिच्छा से ठहरे
जल की भाँति
वनवास भुगत रहे हैं

बेमन से बने इस दृश्य काव्य
को देखने
सैकड़ों भक्तगण आते हैं

अँधेरे में शिवलिंग
उजाले में ठहरा पानी
पिछली शताब्दी में बना
यह तीर्थस्थल।

ठक् ठक्

ठक् ठक्

एक आवाज़

बहुत स्पष्ट सुनाई दी थी

आत्मीय दस्तक

कोई नहीं था

स्वप्न नहीं

स्मृति नहीं

मृत्यु भी नहीं

जागने का संस्मरण

लिखने के लिए

मैं उठ गया

उनींदें अँधेरे में देख रहा हूँ

संचित हो रही है ऊर्जा

आज आकाश को

कौन देखेगा

कौन-सा शब्द

आज पहला शब्द होगा

किस पुरुष की वाणी का
आज कोई अर्थ होगा

यूँ ही तो नहीं बीत जाएगा
अकर्मण्य सा
आज का दिन भी? छिः छिः

स्पन्दन के साथ
गति
कितनी शान्त और स्निग्ध है
मैं अबोध बालक-सा
स्वच्छन्द
विचरण कर रहा हूँ।

ईश्वर का अधूरापन

द्यौ लोक में अटका तारा
कोंपलों पर ठहरी
ओस की बूँद
आकाश को
समर्पित शब्द
ऋतुओं की वर्णमाला
पहली बार
चलने वाले
बच्चे की पदध्वनि
धड़कनों का
जलमय संगीत
द्वैत को समेटकर
एक बिन्दु पर रुकने का
आग्रह करती
यह एकल प्रदर्शनी
तुम्हारे बिना
कितनी अधूरी है

ईश्वर का अधूरापन
ईर्ष्या से
नष्ट कर रहा है
उस शाश्वत
संरचना को
जिसमें भूमा का सुख है
जिसमें धरती को
धारण करने का संकल्प है
जिसमें
रचनारत शिव है

तुम अपने ही
नाद को लीलते
एक बिन्दु हो।

मैं पहचान नहीं सका

उसकी लिखावट में
कोई अन्तर नहीं आया
वह कपड़े भी
वैसे ही पहनता है
नज़र का चश्मा
टाइमेक्स की घड़ी
बाटा के जूते
कस्बे का मुस्कुराता चेहरा
उसकी आँखों का होना न होना
उसके मस्तिष्क की सिलवटों का
तिरछा होना

हीरालाल या रामचन्द्र
ऐसा ही कोई नाम
वह हमसे कोई अलग नहीं था

एक दिन वह
मेरे घर आया जहाँ
दो बड़े होते वृक्ष हैं
अहाता है

मेरे लिए प्रदत्त
आकाश का टुकड़ा स्थिर है
चाँपाकल और नहाने की
खुली परिधि
अमरूद के फलों को खाने
पक्षी आते हैं

एक शान्त चुलबुल-सी
हरी दुनिया को देखकर
वह टहलने लगा
उसकी जुबान
लड़खड़ाने लगी
अस्पष्ट से शब्द
मुँह से निकलने लगे
कहने लगा
वह हत्यारा है
गुजरात में कइयों को
जिन्दा जलाने में
वह भी शामिल था।

इतना कहकर
निर्निमेष
कहीं देख रहा था

एक चिड़िया ने
वहीं दम तोड़ दिया
कई दिनों बाद
नेवला आया
घूर कर चला गया
रोज़ खिलने वाला फूल
उस दिन नहीं खिला था
मेरी पिंडलियों में
अचानक दर्द शुरू हुआ

वह चुप नहीं रह सका
लम्बे लम्बे वाक्य बोलता रहा
जिसमें चीखें थीं
रोना था
लोगों की डरी हुई आँखें थीं।

मैं पहचान नहीं सका
पक्षी पहचान रहे थे।

एक परिचित की मृत्यु पर

उसे नापसन्द थी ऐसी मृत्यु
वह सफेद रंगों को नकारता था
कहता था
तीन पौधों ने उसे बावरा कर रखा है।

(1)

समुद्री किनारे पर फैली
गीली रेत पर
अक्षरों से प्रेम को लिखते हुए
वह रास्ता देखता है
लहरें कब उसे मिटाएँगी।

(2)

जिन आँखों से मैंने उन्हें
प्रेम करते देखा
वह मेरी नहीं थी
या फिर
जो मैंने देखा
वह प्रेम नहीं था।

(3)

कोई तीसरा कैसे शामिल हो सकता है
प्रेम में
ईश्वर भी अनर्गल है
मेरी उपस्थिति, चेतना, समय और
उनकी देह का स्पन्दन था।

(4)

शरीर से देह की यात्रा
कितने दिनों बाद कर रहा हूँ
देह के अंग-प्रत्यंग
अधूरे-अधूरे से
खिल रहे, छिप रहे, बोल रहे हैं
विस्मित आँखें हैं
मन है
शायद
देह होना ही
शरीर की आकांक्षा है

(5)

चमकीली सुबह के
इस अँधेरे में
ठहर रही हैं नज़रें
सूर्य के सातों रंग
निष्प्रभ ललक रहे हैं
शब्द, स्तुति, लीलाएँ,
सब याद आ रही हैं

शायद
समझ रहा है प्रेम
देह को

(6)

धुँधले रंग
मटमैला वृत्तान्त
अपरिचित समय
प्रतीक्षा कर रहे हैं
शब्दों के नष्ट होने की

धीरे-धीरे
कैमरा दूर होता जा रहा है
शब्द पारदर्शी हो रहे हैं
मौन रच रहे हैं।

(7)

अनायास ही
बहुत से हाथ
मेरे हाथ में आ गये
उनमें
एक वह भी था
जिसे मैं बरसों से
थामना चाहता था

जिस तरह शब्द उन्हें लाए थे
शब्द ले गये

कभी कभी
दबे पाँव आता है
प्रेम

यक्षियों के उस निर्जन प्रदेश में

यक्षियों के उस निर्जन प्रदेश में उनसे
भेंट नहीं हुई
रिसता रहा पहाड़ों से पानी
बहती रही नदी
सूर्य किरण से बहुत दूर
मनुष्यों का एक काफ़िला
जाने किधर निकल गया
यकीनन्
शहर नहीं गया होगा
भयभीत सोच रहा हूँ मैं
क्या नदी के रास्ते चल पड़ूँ

सारी सभ्यताओं ने
वहीं जन्म लिया
वहीं
इच्छा और आवश्यकताओं ने
अपने दाएँ बाएँ पर फैलाएँ
क्या नदी की स्मृति में
आदिम मनुष्य की
कोई तस्वीर नजर आएगी?

कितनी सरलता से कह दिया
नदी की स्मृति

मैं क्यों ढूँढ रहा हूँ
उस काफ़िले को
नितान्त अकेलेपन के दर्शन ने
हरी घास पर
थोड़ी-सी नींद भी नहीं दी

या फिर
अनेकानेक लोगों के अनर्गल
छिछले सोच ने
मुझे मेरे समय में
कोई आर्द्र जीवनशैली नहीं दी

देखता रहा
नीली रोशनी की तरह
भोर में स्मृतियों को
उजाले में जुगनुओं को

एक दिन
सिर्फ एक दिन मैं
उनके साथ रहना चाहता हूँ

हे ईश्वर!

उनके सामने पहुँचते ही मुझे

अदृश्य कर देना

मैं उन्हें निहारता रहूँ

कोई संवाद, आँखमिचौनी

कहीं कोई मुद्रा या तेवर

उन्हें नज़र नहीं आये

मैं मौन,

शान्त नहीं रह सकूँगा।

राग विभास (1)

राग विभास के
खत्म होते होते
कुछ टूटने लगा था

मेरे कमरे में रखी
छोटी-सी घड़ी
अचानक गिर पड़ी थी

आसलगाँव में
उस बुढ़िया के करघे का
सूत टूटा था

पश्चिम में
कोयल की आवाज़
काँप गयी थी

बड़े बूढ़ों ने
कई दिनों बाद
शब्द जोड़ना सीखा था।

एक तो नहर
और उसके बाद पानी
गाँव में
बहुत दिनों बाद आया था।

राग विभास (2)

न तो
विभास की आभा
मलिन होगी
न असंगत टूटने की प्रतीति

उस लुप्त होने
टूटने या
मृत होने को
अनन्य जल ने
जलमय होने नहीं दिया।

विभास
सिर्फ राग नहीं है।

राग विभास (3)

मेरे पास
लौट आओ कहने का
कोई आदिम लहज़ा नहीं है

न आमन्त्रण, न
कोई सुरमई सृष्टि

स्पर्श का
न कोई जादुई संस्मरण है
न नैनों की
कोई अनमनी भाषा

कुछ भी
हासिल नहीं होगा
मेरी इस देह से

विभास
यही तो कह रहा है
सदियों से

राग में
अभी अभी
परिवर्तित हुआ है।

राग विभास (4)

विभास के हाथ
पानी के हाथ हैं
विभास की आँखें
शब्दों की आँखें हैं
विभास की हँसी
आकाश की हँसी है
विभास का मौन
अनवरत कोलाहल करती
समुद्र की लहरों का मौन है
विभास की गति
ठहरने की गति है

विभास!

किसी भी उपमा का पर्याय नहीं है।

राग विभास (5)

विभास

राग में टूटने का सौन्दर्य है

विराग में

जुड़ने का न्याय है।

(हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की सुप्रसिद्ध गायिका किशोरी अमोनकर के
गाये 'राग विभास' को सुनकर, "उन्हीं" को समर्पित।)

रोज़ एक फूल खिलता है

सर्दियों में
सुबह दस बजे
रोज़ एक फूल खिलता है
गति,
शायद वहाँ विश्राम लेती है

ठंडी, असम्भूत हवा
ठहर कर
फूल के जामुनी रंग को गहराती
श्वेत शब्द की लाली से
अठखेलियाँ करती
असमय
प्रकट हुए सौन्दर्य को
मुड़कर देखने का आह्वान करती-सी
अन्ततः गति को स्थिर करती है

कितने संवाद रचे गये
चुप रहने के लिए
कितनी धड़कनों को कैद किया गया
कितने जंगलों से
उसका संगीत चुराया गया

कितनी तुतलाती आवाज़ों को
एक भय ने आक्रान्त किया
सुबह खिलने वाले उस फूल के लिए
यानी उस स्थिर गति के लिए

अशक्त है
मानवीय संसार की
असंख्य शब्द संरचनाएँ
दृश्य की अलौकिक वासनाएँ
अनन्य स्वर सम्मदाएँ
करोड़ों मनुष्यों की उपस्थिति

कितनी नश्वर कल्पनाएँ है
कितने ईश्वरीय छल हैं
कितने प्रकाश पुंज का भंडार है

लौटकर
सम पर आने की विरक्ति का उत्स
शायद उस एक सम्बन्ध में है
जहाँ गति विश्राम करती है
जहाँ सौन्दर्य
अपने आलोक में खिलता है
जहाँ सहजता मुस्कुराती है

मंडी हाउस में फ़कीरी

तुम
उस वेष को धारण करना
उस जुनून में रमे रहना
उस हवा
उस आवाज़ के घेरे में
उस ज़मीन के टुकड़े
उस धूप की महक
उस रंग के विस्तार को देखना
उस पूरे
नृत्य, कला, शब्द, संगीत
भावनाओं और
अनहद के संसार में
अनन्य रहस्य की तरह

एक फ़कीर
और किसी की मज़ार
वृक्ष में घोंसले की तरह
घर बसाये बैठे हैं।

जो सब जानते हैं
वे वहाँ
कुछ नहीं जानते

एक दूसरी भाषा के शब्द
वहाँ फूल की तरह बिखरे हैं
हर कोई
बच के चल रहा है वहाँ

चम्पा की गन्ध की तरह
याद आता है
मीठी नीम का दरगाह
याद आते हैं शंकर-शम्भू
नफीसा के नखरे
नुरुद्दीन का ठहाका

उसी धुन में
मैं कई सड़कें पार कर जाता हूँ।

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu



विजय शंकर

जन्म : 2 मई 1955, नागपुर

शिक्षा : एम ए (हिन्दी),

नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर

1995 : "आज मैंने बहुत-सा उजाला देखा"

कविता संग्रह, प्रकाशन संस्थान,
दिल्ली से प्रकाशित

2001 : भारतीय स्टेट बैंक से स्वैच्छिक
सेवा-निवृत्त।

2002 : हिन्दी द्विमासिक कला पत्रिका
'क' (कला सम्पदा एवं वैचारिकी)
का दिल्ली से सम्पादन।

2008 : कलावर्त न्यास, उज्जैन से
कला पर लेखन के लिए
'राष्ट्रीय वर्ण पट सम्मान'

सम्पर्क : 434, गणेश नगर-II,

गली नं -2, शकरपुर,

दिल्ली-110092

कैसी होती है जल की नींद?

बहती नदी को देखा
सोते को बहते देखा
पहाड़ों से रिसते पानी को देखा
जल प्रपात को देखा
कहीं भी तो स्थिर नहीं है जल
तालाब का जल भी
नहीं! नहीं!

बहुत सम्भव है
थोड़ी नींद तो वह
हममें ही लेता होगा
हम मनुष्यों को
जीवधारियों को
शायद
बहुतों के लिए
नींद लेनी पड़ती होगी

ऐसी ही एक नींद वह
महावृक्ष के नीचे ले रहा था।

(इसी संकलन से)



साहित्य सदन

प्रिय साहित्य सदन

2226/बी, गली नं. 33, पहला पुस्ता

सोनिया विहार, दिल्ली-94

मो. : 09211559886

मूल्य : रुपये 150.00

ISBN 978-81-88705-20-7

